॥ ईं ॐ श्रीं: ॥

॥ ऋषिसन्देश ॥

वाक्सुधा

आर्ष—

वेद—धर्म—विद्या

प्रचार



॥ वेदोऽखिलो धर्ममूलम् ॥

श्री दैवरातः

मुझे इस कार्य में प्रथम आश्रम प्रतिष्ठा के लिये मुंबई के "श्रीमान् मगनलाल परभू दास मेहता, राजरत्न सिद्धपुर" इन्होंने आधे लाख रुपया तक सहाय किया है। उसके लिये मैं उनका धन्यवाद करता हूं।

१ श्री ३ सरकार युद्ध सम्शेर महाराज नेपाल
२ श्री पद्मसम्शेर कमाण्डर इन् चीफ ,,
३ श्री ६ स्वर्गीय (बड़े गुरुजी) राजगुरु तर्कराज पंडित जी नेपाल
४ श्री ६ राजगुरु भोगेन्द्रराज जी नेपाल
५ श्री ६ बड़े गुरुजी हेरम्बराज जी ,,
६ श्री ६ राजगुरु पं० हेमराज जी ,,
७ श्री ६ पं० विश्वराज जी ,,
८ श्री ६ पं० खगेन्द्र राज जी ,,
९ श्री रामकुमार साव० श्री हनुमान जी मारवाड़ी समाज ,,
१० श्री पं० मदनमोहन मालवीय: काशी
११ श्री नाना साहेब ॐकार ,,
१२ श्री रा० रा० वामनराव नायक दक्षिणहैदराबाद
१३ श्री लालगीर जी ,,
१४ श्री बीर भानगीर जी ,,
१५ कृष्णा जी नायक ,,
१६ श्री विद्या प्रसाद जी वैद्यनाथ धाम
१७ श्रीबाबू जयगोविन्द पाण्डेय, शीतलपुर

इत्यादि महाशयों ने आजतक जो सहाय किया है उसके लिये मैं उनका धन्यवाद करता हूं।

प्रस्तुत आपलोग मेरे इस विषय को स्वीकार कर के यह सुनने की जो सहानुभूति दी है इसके लिये मैं आपलोगों का धन्यवाद करता हूं।

आपलोगों का कल्याण हो यही श्री भगवान से मेरी प्रार्थना है।

॥ ई ॐ श्रीः ॥

श्री क्षेत्र गोकर्ण

॥ गोरक्षा ब्रह्मचर्याश्रमः ॥

"धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा"

वेदोऽखिलो धर्ममूलम् ! आध्यात्मविद्या विद्यानाम् !!

॥ श्रीगौर्विजयते चिरम् ॥

॥ ऋषिसन्देश ॥

"प्रधानोद्घोषणा"

आपलोगों को विदित हो ? कि—

इस प्रपञ्च में सदसद्विवेकशाली मनुष्यों के हित के लिए "कर्तव्य-अकर्तव्य-अवबोधादि" विषयों में विधि-निषेध-निष्ठादि शास्त्र प्रवृत्त हुआ है।

उसी शास्त्र के अनुसार धर्म-विद्या का शिक्षण, और तपो योगादि सत्क्रिया, तथा सद्विद्या के द्वारा त्रिकरण शुद्धि से अपने प्राचीन महर्षि लोगों ने स्वतन्त्र आध्यात्मिक शक्ति और शाश्वत सुख भी प्राप्त कर लिया है।

उसी तरह धर्म का आचरण, और तपोयोगादि सत्क्रियाएँ, तथा

सद्विद्या का परिशीलन करने से सब लोग इस वक्त भी उसी प्रकार आध्यात्मिक-स्वतन्त्र शक्ति और शाश्वत सुख भी प्राप्त कर सकते हैं।

अर्थात् इन शास्त्रीय धार्मिक सद्विद्या के विषयों में शब्द मात्र से जो कुछ विदित होने पर भी यथोक्त आचरण-उपासना-विचारादि साधन विशेष के बिना फलतः अनुभव पदवी में आरूढ होने को समर्थ नहीं हो सकते हैं ऐसा सिद्ध होता है।

इसलिये बालपन में त्रिकरणरूप वाङ्मनः प्राण शरीरेन्द्रियों के कोमल अवस्था में ही नैतिक लौकिक और वैदिक सद्विद्याओं के आचरण का शिक्षण मिलने से, तथा गुरुकुल में ब्रह्मचर्यसदाचारादि धर्मों का अनुष्ठान और योग तपश्चर्यादि सत्क्रिया का परिशीलन करने से ही शास्त्रोक्त पूर्ण फल प्राप्त करने को समर्थ होते हैं।

वैसे ही हित मित मेध्यादि सात्विकाहार भी स्थैर्य बल आयुष्य आरोग्य सद्बुद्धि सत्वशुद्धि सत्वोत्कर्षादि गुणों की अभिवृद्धि से पूर्ण हित का कारण होता है।

इस प्रकार आहार बिहारादि सर्वत्र विषयों में शास्त्र के उपदेशानुसार सभी लोगों को नियत प्रवृत्ति-निवृत्ति-स्वरूपस्थितिरूप विधि-निषेध-निष्ठा मार्ग से ही—"स्वकीय संसार, सम्पूर्ण प्रपञ्च कार्य, श्रेष्ठ परमार्थ" वगैरह सब कुछ ध्येय सिद्ध होता हैं ऐसा शास्त्र में प्रसिद्ध हैं।

और यह विषय नैतिक शिक्षण से सुशिक्षित आधुनिक लोग, तथा प्राचीन सभी प्रामाणिक सुज्ञजनों के अनुभव से भी अविरुद्ध है।

इस लिये हम सभी लोगों को आध्यात्मिक स्वतन्त्र शक्ति और शाश्वत शान्ति सुख के द्वारा आत्मोद्धार के लिये अपने प्राचीन महर्षियों को वह आर्ष "वेद-धर्म-विद्या" ही शरण हैं।

उसमें ऋग्वेदादि आर्ष ग्रन्थों के मुख से शब्द शिक्षण, तथा

शास्त्रानुसार धर्म का आचरण, और योग तपश्चर्यादि अध्यात्मविद्या का शिक्षण, तथा परिशीलन ही प्रधान हैं।

उस में भी "कामचार, कामवाद, कामभक्षादि" यथेच्छाचार निवृत्ति से उपनयनादि वैदिक संस्कार पूर्वक आचार्य कुलनिवास, (से) नियत आहारविहारादि नियम (से),"सन्ध्योपासना, अग्निपरिचर्या, ब्रह्मचर्य व्रताचरण, वेदवेदाङ्गादि आर्षग्रन्थों का अध्ययन, भक्ति-योग, उपासना, प्राणायामादि योग क्रिया, शास्त्रोक्त कृषि गोसेवा, मन्त्रयोग, तपश्चर्या, ईश्वराराधना, अध्यात्म विचारादि सद्विद्याओं से सम्मिलित "आर्ष वेद-धर्मविद्या" का शिक्षण, और उसका निरन्तर परिशीलन ही प्रपञ्च और परमार्थ सिद्धि का प्रधान साधन हैं।

तत्रापि "सात्विकाहार, ब्रह्मचर्य, धर्मनिष्ठा, निर्व्यसन, सत्य-सन्धता, द्वन्द्वसहनशीलता, कर्तृत्वशक्ति, निस्स्पृहतादि सद्विद्याओं का शिक्षण ही श्रेष्ठ है।

उससे भी " जिव्हा उपस्थादि इन्द्रियविजय, ब्राह्मी शरीर सम्पत्ति, त्रिकरणशुद्धि, सत्वोत्कर्ष, आत्मबल, ब्रह्मतेज, क्षत्रियों को (शौर्य वीर्यादि) क्षात्र तेज, जितेन्द्रियत्व, ज्ञान-क्रियादि शक्ति, मन्त्र तपोयोगादिसिद्धि, निग्रहानुग्रहसामर्थ्य, अन्तर्मुखता, दिव्यदृष्टि, निर्भय, आत्मशान्ति" वगैरह अलौकिक गुण भी जिस सद्विद्या से मिल सकेंगे उसी योगतपश्चर्यादिरूप आर्ष "वेद-धर्म-विद्या" का परिशीलन ही वीर्य-वत्तर हैं।

कृतत्रेत द्वापारादि प्राचीन युग में भी वसिष्ठ विश्वामित्रादि महर्षि लोग, भार्गव रामादि ऋषि कुमारक महापुरुष, और विदेह राजा जनक भगीरथ युधिष्ठिर वगैरह महाराजाओं, तथा ध्रुव राम लक्ष्मणादि राज-कुमार लोग, श्रीकृष्णादि अवतारी पुरुष भी उसी आर्ष—"वेद–धर्म–विद्या" के परिशीलन से ही योग तपश्चर्यादि साधन द्वारा दिव्य शक्ति

का सम्पादन करके उस अध्यात्म शक्ति से ही इस प्रपञ्च को सजीव और सुवीर्य बनाकर अपने आत्मोद्धार से अजरामर कीर्ति तथा शाश्वत स्वतन्त्र शान्तिसुख की पदवी में आरूढ हो गये हैं।

आज हमारे उन प्राचीन वसिष्ठादि महापुरुषों के पश्चात् उनके साथ ही साथ उनकी वह आर्ष आश्रम शिक्षण पद्धति भी इस भारत भूमि से लुप्त हो गयी हैं।

आज हमलोगों के वेद शास्त्र और तन्त्रयोग तपश्चर्यादि अध्यात्म विद्याओं के सच्चे रहस्यों के ज्ञाता भी बिरले कोई २ देखने में आते हैं।

"यह भारत भूमि" जो एक दिन आर्ष वेद तपो योगादि सद्विद्याओं से विभूषित सत्पुरुषों का निवास स्थान होने के कारण सारे भूमण्डल का पूज्य स्थान माना जाता था; और उनकी अलौकिक आध्यात्मिक दिव्य शक्ति के प्रभाव से ही सुवीर्य और स्वतन्त्र शाश्वत शान्ति सुख का केन्द्र स्थान बन गया था। वह भी उन वेदादिवाङ्मयों और धर्म-तपो-योगादि सद्विद्याओं के उनके सच्चे तत्ववेत्ता शिक्षक की शिक्षा के अभाव से लुप्त होने के कारण अपने गौरव को खो बैठी है।

आज विद्या शिक्षण के लिए हजारों संस्थाएं इस भारतवर्ष में मौजूद हैं। किन्तु उस विद्या के शिक्षण से शारीरक मानसिक तथा वाचिक बल प्राप्त कर जो लोग तैयार होते हैं। वे आप की आंखों के सामने हैं।

सद्यः स्थिति में केवल बाह्य दृष्टि से लौकिक क्षुल्लक क्षणिक विषय सुखोपभोग के लोभवशात् अपने कर्तव्य सत्यमार्ग और धर्म से प्रत्युत हुए अतएव पारतन्त्र्य दुःख में गिरे हुए हमलोगों के उद्धार के लिये शास्त्र दृष्टि के अनुसार मेरी राय से इस वक्त अपने प्राचीन महर्षियों की उसी आर्ष "वेद-धर्म-विद्या" का वही आश्रम शिक्षण एक

ही सच्चा आधार हैं। और वही विद्या कहलानेलायक है—वही सच्ची विद्या है।

अतएव इस वक्त हमलोगों को ऐहिक स्वतन्त्र सुख जीवन स्थिति, और पारमार्थिक शाश्वत शान्ति सुख की सिद्धि के लिए भी उसी प्राचीन आर्ष सद्विद्या का परिशीलन ही अत्यन्त आवश्यक हैं।

उस तरह के वेद धर्म विद्याशिक्षण का आर्ष आश्रम ही इस भारत भूमाता का एक महत् सौभाग्यरूपी अलङ्कार हैं। और वह आर्ष आश्रम ही हम सभी लोगोंके सम्पूर्ण जीवितोद्धार का प्रधान आश्रय है।

यह सम्पूर्ण प्रपञ्च चक्र भी "आर्थिक, शारीरिक, धार्मिक, वैज्ञानिक, वाचनिक, सामाजिक, आध्यात्मिकादि" रूप शक्ति और सम्पत्तियों के आधार से ही चल रहा है।

वे सात सम्पत्तियां भी "आहार, विहार, आचार, विचार, उच्चार, प्रचार; साक्षात्कार" रुप सात सद्विद्याओं के आधीन में हैं।

उन सम्पत्तियों तथा धर्म विद्याओं का अभ्युदय भी केवल शिक्षण सम्पत्ति के आधीन है। अतः अविद्या अशिक्षण दुःशिक्षण दुर्व्यसन दुराचारादि विषयों के संस्कार से कलुषित भए हुए हमलोगों के उस दुष्ट संस्कार के परिवर्तन के लिए सब से पहले अपने प्राचीन महर्षियों के विद्याक्षिण परम्परा प्राप्त वेद धर्मादि आर्ष सद्विद्याओं की शिक्षण सम्पत्ति के अभ्युदयार्थ ही प्रयत्न और योजना करने की अत्यन्त आवश्यकता है।

उस आर्ष सद्विद्याशिक्षण सम्पत्ति का अभ्युदय भी "श्रद्धा, शास्त्र, धर्म, नीति, लोकमर्यादा, गुरुजनादि आज्ञा, राजजनतादि सहाय, शासन पद्धति" वगैरह साधनों से ही पूर्ण हो सकता है।

इस प्रकार शास्त्रीय नियम से आर्ष वेद-धर्म-विद्याओं के शिक्षण

और प्रचार के द्वारा अपने प्राचीन महर्षियों की ऋषि कालीन उसी आर्ष संस्कृति का पुनरुज्जीवन ही इस प्रचार का प्रधान ध्येय है।

अर्थात् उसी सद्विद्या के अभ्युदय से ही "लौकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु॥ सब लोग सुखी हो—ऐसे सब लोगों के शान्ति सुखाभ्युदय का दर्शन ही सर्वात्मना उद्दिष्ट है।

उस आर्ष सद्विद्या से ही सभीलोगों का कल्याण और उद्धार होगा। उसीसे सब लोग सुखी होंगे।

मुझे इस विषय में पूर्ण सुदृढ़ आत्मविश्वास है कि—उन्हीं महर्षियों के योगतपश्चर्यादि पुण्य के प्रभाव से फिर से सारे भारतवर्ष में इस आर्ष सद्विद्या का अभ्युदय होगा, और यह आर्ष ध्येय भी पूर्ण सिद्ध होगा।

और सद्विद्या के शाश्वत शान्ति सुख सौभाग्य भाग्योदय का वह सुदिन भी हम लोगों को देखने को मिलेगा।

वही हमलोगों को अहो? धन्य भाग्य है कि—जो आर्ष वेदयोगादि सद्विद्या से अपने प्राचीन आर्ष शाश्वत शान्ति सुख निधि को पालेंगे।

इस प्रकार इस वक्त पुरुषों को विशेषतः वैदिक धर्म विद्या का शिक्षण जैसे अत्यन्त आवश्यक है, वैसे ही जनता के अर्धावयव रूप स्त्रियों को भी उनके अधिकारानुसार गृहिणी धर्म का शिक्षण, देना और उसके लिये पृथक् व्यवस्था करना भी अत्यन्त आवश्यक है; उसमें स्त्रियों का भी नैतिक लौकिक वैदिकादि विद्याओं का शिक्षण, तथा संस्कृत प्राकृतादि ग्रन्थों, तदर्थज्ञान, वैदिकधर्म, योगक्रिया, विशेषतः—गोसेवा, कृषि, पाक, गृहकृत्य, अग्नि-देवतादि परिचर्या भक्ति मार्गीय स्तोत्र भजन पूजापाठ, अतिथिसत्कार, पतिसेवा, गर्भपोषण, शिशुरक्षण, बाल शिक्षणादि गृहिणी धर्म-विद्या का शिक्षण ही प्रधान है

उसमें भी उनके अधिकारानुसार आहारविहारादि सात सद्विया विषयों का नियम ही मुख्य है।

स्त्रियों को मातृत्वपद पाना ही एक बड़ी भारी तपस्या का फल और सौभाग्य है। वह शास्त्रीय मातृत्व पद कुछ आसानी से नहीं मिल सकता है। वह ध्रुव पद के माफक इस लोक में सब से बड़ी एवं उच्च पदवी है।

गर्भ से ही युक्त आहार विहारादि सक्रिया और सद्भावना सदाचारादि धर्म से अपने बालकों को "सुदृढ़ सशक्त नीरोगी सुवीर्य सुशील सुमति सदाचारी सच्चरित्री निर्व्यसनी सुविनीत तेजस्वी और अपने वंशवृक्ष तथा इस प्रपञ्च चक्र को चलाने में समर्थ एक आदर्शरूप पुरुष बनाना ही माता का धर्म है। माता का शरीर ही बच्चों का शरीर हैं, माता की प्रकृति ही प्रकृति हैं, मातृ भाषा ही भाषा है। माता का रक्षण ही सच्चा रक्षण है। माता का शिक्षण ही सच्चा शिक्षण हैं।

जन्म से ही बच्चे लोग माता के "भाषा भाव और "कृति" वगैरह सभी विषयों का अनुकरण करतें हैं।

इसलिये माता को अपने भावा सन्ताना के हित के लिये आहार विहारादि सभी विषयों में यथोच्छाचार छोड़ के नियत रहना चाहिये।

सभी लोग अपने बच्चों का हित ही चाहते हैं। परन्तु वह सच्चाहित कौन सा है, और वह कैसे होगा यह मात्र नही जानतें है। कोई २ जानने पर भी अपने मोहवशात् कर नही सकतें हैं। कोई२ कर सकने पर भी आलस्य और उदासीनता से नहीं करतें हैं।

पीछे अनर्थ का प्रसंग आने पर पछताना पड़ता है। तब "उस का प्रारब्ध ही ऐसा है" ऐसे कहते हुए सब कुछ प्रारब्ध के उपर छोड़ देते हैं।

उसमें अज्ञानी बालकों का कोई भी अपराध नही हैं। सद्योजात अवस्था में वे साक्षात् ईश्वर के समान निर्द्वन्द्व से ही रहतें है। माता पिता रक्षक शिक्षक वगैरह लोग जैसे २ खिलाते है वैसे २ खाते है। जैसे २ कराते हैं वैसे २ करतें है। केवल दूसरे का अनुकरण करना ही उनके निर्मल हृदय का स्वभाव सिद्ध धर्म है।

आज इस प्रपंच चक्र को आगे चलाने का भार तरुण अथवा बृद्ध लोगों के उपर नही है, किन्तु बच्चों के उपर ही है।

आज यदि बच्चों को सद्विद्या का संस्कार नही देंगे, और उनको सुशिक्षित समर्थ नही बनायेंगे, तो यह पृथ्वीतल निर्वीर्य ही हो जायगा। उसी के लिये शिक्षण देते भी हैं। परन्तु अपने मन का माफक देते हैं। उसी रक्षण शिक्षण के माफक ही लोग तैयार होतें है।

मनुष्यों को सभी तरह के सच्चे सुख के लिये त्रिकरण रूप "वाङ्मनः प्राण शरीरेन्द्रियों और उनका धर्मरूप भाषा भाव और कृति" के संस्कार से परिवर्तन करना चाहिये। उसके लिये बच्चों को जन्म से, अथवा गर्भ से ही संस्कार देना चाहिये।

माता का गर्भ से बच्चों का जो शरीर और प्रकृति बनती ही वही सच्चा है।

वैसे ही जन्म से ही स्तनपानादि लेके आहारविहारादि विषयों में माता का जो रक्षण और शिक्षण मिलता है वही सच्चा है।

इसी तरह जन्म से आठ बर्ष तक जो रक्षण शिक्षण मिलेगा उसी का असर अस्सी बर्ष तक पड़ेगा।

बच्चेपन में माता का रक्षण और शिक्षण बिगड़ेगा तो आगे जन्म भर उनको दुर्दशा ही है। और आगे अनेक बातों में उनको छोटेपनसे आदत ही ऐसा पड़गया है ऐसे कहते हुए प्रसंग बिताना पड़ता है।

और आगे पाठशाला में इतर लाखो शिक्षण देने से भी वह निरुप युक्त हो जाता है ।

अथवो खाली किताब में ही रह जाता है ।

वैसे ही पाठशाला में पढ़ने पर भी यदि घर में माता पिता रक्षक शिक्षक वगैरह लोगों का गृह शिक्षण में उसका आचरण शिक्षण नही मिलेगा तो वह शाला शिक्षण भी निरर्थक हो जाता है ।

अतएव बच्चों के रक्षण और शिक्षण के लिये जन्म से अथवा गर्भ से ही जागरुकता से रहना, पीछे पछताना पड़ेगा । पीछे खाली पछताने से भी कुछ प्रयोजन नहीं ।

अर्थात् इस अनर्थ को दूर करने के लिये ही स्त्रियो को सब से पहले गृहिणी धर्म तथा मातृत्व धर्म का शिक्षण देना जरूरी है ।

इस प्रकार जबतक स्त्रियों को मातृत्व धर्म का शिक्षण नहीं मिलेगा, और उनको मातृत्व पदवी में आरूढ होने की योग्यता नही आयगी, तबतक उनके सन्तानोंको अन्य किसी तरह से भी ऊची प्रगति नही हो सकती है ।

प्राचीन युग में सीता द्रौपदी सुरुचि वगैरह राजकुमारिकाएं भी उसी आर्ष सद्विद्या और सती धर्म की तपश्चर्या से ही सभी स्त्रियों की अग्रगण्य पतिव्रता पदवी में आरूढ हुई है ।

और जिन्होंने गर्भ से ही संस्कार से अभिमन्यु जैसे वीर पुरुष, और ध्रुव जैसे महापुरुष को पैदा की है ।

वैसे ही महर्षि कण्व के आश्रम में आर्ष सद्विद्या का शिक्षण पाई हुई सती शकुन्तला ने भी अपने सती धर्म के प्रभाव से प्रपञ्च

विजयी सुकुमार को पाया है। जिसके नाम और प्रभाव से यह हिंदुस्तान "भारत भूमि" के नाम से आज भी सजीव है।

आज थोड़ा धैर्य का अवलम्बन कर हमें विचार पूर्वक यह देखना उचित है कि—अपना कर्त्तव्य, और कर्त्तव्य से प्राप्तव्य क्या है।

सब लोग सुख ही चाहते यह स्वभाव सिद्ध विषय है। वह सुख भी धर्म से ही मिल सकता है ऐसा शास्त्र तथा लोक में भी प्रसिद्ध है। वह धर्म भी अलौकिक हैं, और वाङ्मनः प्राण शरीरेन्द्रियों से सम्पाद्य क्रिया उपासना ज्ञानादि रूप ही हैं।

वैसे अलौकिक विषयों की प्राप्ति के लिये शास्त्र तथा शास्त्रानुसार विद्वानों का मार्गदर्शन ही साधन हैं।

अतः प्राचीन महर्षियों के उन धर्मादि सद्विद्याओं के अनुसरण के लिये उनका वचन रूप शास्त्र ही प्रमाण हैं।

उसमें वसिष्ठादि महर्षियों के तपोयोगादि साधन द्वारा दिव्य दर्शन से उपलब्ध ऋग्वेदादि आर्ष वाङ्मय ही सब से प्राचीन हैं।

वही मनुष्यों को शाश्वत सुख के लिये ही—नियत प्रवृति-निवृति-निष्ठादिरूप हितार्थ का शासन करता है। अतएव वह ऋग्वेदादि शब्द राशि ही "शास्त्र" ऐसा कहलाता है।

वह "वेद" ही हमारे सम्पूर्ण धर्म का प्राण हैं। विश्व का आधार हैं। आत्मा का सञ्जीवन हैं। सभी विद्याओं का निधि हैं। सारे शब्द राशि और सभी भाषाओं का मूल है।

वेद ही सभी विज्ञानों का भण्डार है, दैविक यौगिक वैज्ञानिक आध्यात्मिक ज्ञान क्रियादि शक्ति वगैरह अलौकिक विषय भी वेद से ही मिल सकता है।

सभी लौकिक व्यवहार निति कानून कला कौशल्य तथा आधुनिक भौतिक यान्त्रिक वैज्ञानिक वगैरह सभी तरह की विद्या और विषयों का आविष्कार वेद से ही हुआ है। और भी विशेषतः हो रहा है।

यह सम्पूर्ण प्रपञ्च चक्र भी वेद पुरुष की शब्द शक्ति से ही खड़ा है। केवल शब्द शक्ति से ही चल रहा है।

आज जर्मनी यूरोप अमेरिका वगैरह विदेशों में भी वेद का विशेष प्रचार हुआ हैं। और भी अधिकतर हो रहा है।

अपने प्राचीन महर्षियों का बल धन दौलत ऐश्वर्य जो कुछ निधि सर्वस्व भी वेद ही था। आज भी स्वतन्त्र आध्यात्मिक शक्ति, और शाश्वत शान्ति सुख, अथवा अन्य किसी तरह की इष्ट सिद्धि के लिये सम्पूर्ण प्रपञ्च कार्य और परमार्थ साधने के लिये भी हमें अपने प्राचीन महर्षियों की उसी आर्ष वेद धर्मविद्या को ही शरण जाना होगा।

अर्थात् वेद ही सम्पूर्ण धर्म और सब लोगों की प्राण सञ्जीवनी मात्रा है ऐसा सिद्ध होता हैं।

इस प्राण रूपी वेद से रहित धर्मरूपी शरीर और लोग भी कभी भी नही ठहर सकता हैं। धर्म और जनताओं का अस्तित्व बचाना चाहते हों तो उनके प्राणरूपी वेदवाणी के मुख से सद्विद्या को जनता में जगाना एक ही उपाय है।

अन्यथा जनता के सुख और शान्ति के लिये इतर लाखों सुधार करके भी आप विफल रहेंगे। जब तक वेद धर्म तपोयोगादि सद्विद्याओं के द्वारा भारत के भावी सन्तानों का वाङ्मनः प्राण शरीरेन्द्रियरूप त्रिकरण के संस्कार से काया पलट नहीं करेंगे, तब तक भारत भूमि को परतन्त्र दुःख से कभी मुक्त भी नही कर सकेंगे।

अत्यन्त पश्चाताप के साथ कहना पड़ता हैं कि—आज हम लोग

पाश्चात्यशिक्षा और सभ्यता में अपने आर्ष जनता को इतना डुबाते जा रहें हैं कि—वेद योगादि विद्या जैसे अपने प्राचीन अमूल्य निधि का मूल्य भी भूलते जा रहें हैं।

आज हमारे वेदशास्त्रों और योगादि अध्यात्म विद्याओं के सच्चे ज्ञाताओं के अभाव से उनका यथार्थ उपदेश भी हमें नही मिल रहा हैं।

अतएव हमारे पथभ्रष्ट होने के कारण अपनी अमूल्य से अमूल्य वस्तु से भी अविश्वास और उनमें हमारी अश्रद्धा भी बढ़ती जा रही हैं। इसके परिणाम स्वरूप हम पतन की ओर बढ़ रहे हैं।

उपरोक्त बातों को ध्यान में रख भगवान की दी हुई शक्ति के द्वारा फिर से सारे भारतवर्ष में उस "आर्ष वेद धर्म विद्या" का प्रचार करना ही मैंने अपना जीवनोद्देश माना हैं।

आज कल केवल संस्कृत विद्यालयों में ही नही बल्कि प्राकृत हिन्दी महाराष्ट्र इङ्गलिश वगैरह कॉलेजों में भी अधिक प्रमाण से संस्कृत विद्या का प्रचार हो रहा हैं।

और संस्कृत वाङ्मय के काव्य नाटकादि साहित्य, व्याकरणादि वेदाङ्ग, न्याय मीमांसादि उपाङ्ग, आयुर्वेदादि उपवेद, गीता उपनिषद् वेदान्त शास्त्र वगैरह इतर सभी तरह के संस्कृतग्रन्थों के उपर प्राचीन आचार्य लोग, तथा इतर विद्वान् लोगों के बनाये हुए अनेक तरह के विस्तृत भाष्य तथा व्याख्या ग्रन्थ भी प्रसिद्ध हुए है।

और उनके शिक्षण तथा प्रचार की व्यवस्था भी योग्य प्रमाण से बन गई है। और भी विशेषतः अनेक नूतन ग्रन्थों का आविष्कार तथा उनका प्रचार भी अधिकतर हो रहा हैं। यह हर्ष की बात हैं।

किन्तु—अपने प्राचीन वसिष्ठ वामदेवादि महर्षियों की योग तपश्चर्या और दिव्य दृष्टि से उपलब्ध सम्पूर्ण धर्म तथा ज्ञान के प्रधान

प्रमाण भूत साक्षात् ईश्वर शासन रूप मन्त्रब्राह्मणात्मक ऋग्वेदादिवेद वाङ्मयों के विशेषतः तात्विक अर्थों का विमर्शन, और उनकी विस्तृत व्याख्या, तथा नूतन व्याख्या ग्रन्थों का आविष्कार, और उनके शिक्षण का प्रबन्ध तथा प्रचार भी योग्य प्रमाण से नही हुआ है।

उसके लिये इस भरतखण्ड में कहीं भी कोई प्रबन्ध नहीं हैं न करने के लिये किसी का लक्ष्य है।

इंग्लैन्ड जर्मनी अमेरिका वगैरह विदेशों में मात्र वेदवाङ्मय का तत्व विमर्शन, वह भी भौतिक वैज्ञानिक दृष्टि से विशेष संशोधन और उसका प्रचार भी यहां से भी अधिक प्रमाण से हुआ हैं, और भी विशेषतः बढ़ रहा है यह बात प्रायः सभी विद्वान् लोगों को विदित ही है।

यद्यपि—"विजयनगर कर्नाटक साम्राज्य के समय में श्रीहुक्क और बुक्कण भूपतियोंने सायनादि आचार्यों के द्वारा ऋग्वेदादि वेदों का भाष्य प्रसिद्ध कराया है। यथोपि वह भाष्य भी आजतक केवल सूत्र रूप ही रह गया है। और उसमें भी प्राहः यज्ञादि विनियोग पर ही अर्थ किया गया है।

उसका विशेषतः तत्व विमर्शन और विस्तृत व्याख्यादि आविष्कार भी अभी तक नहीं हुआ है।

अतएव सभी लोगों को वेदों के तत्व ज्ञान का लाभ होने के लिये गीता उपनिषद् और दार्शनिक सूत्र ग्रन्थों के माफक, अथवा उनसे भी अधिक प्रमाण से विस्तृत रूप से, तथा सुगम सूत्र भाष्य व्याख्यादि रूप से वेदों का तत्व विमर्शन और उस का प्रचार भी करने की अत्यन्त आवश्यकता है।

आजकल इस भारतवर्ष में सब दूर साहित्य न्याय व्याकरणादि ग्रन्थ और हिन्दी इङ्गलिश वगैरह ग्रन्थोंका पाठ प्रवचन ही चल रहा है।

उतनेही से मूल वेद राशि का अर्थ ज्ञान नही होता है।

वस्तुतः उन अङ्गोपाङ्ग ग्रन्थों का अध्ययन भी उनके मूल भूत वेदों के अर्थ ज्ञान के लिये ही है। वेदार्थ ज्ञान के सिवा केवल अङ्गोपाङ्गादि ग्रन्थों के अध्ययन से पूरा ज्ञान वगैरह प्रयोजन नहीं मिल सकता है।

इस लिये इतर सभी वाङ्मयों के मूलभूत साङ्गोपाङ्ग वेदों का सार्थ अध्ययन की व्यवस्था भी करने की अत्यन्त जरूरी है।

अतएव इस प्रकार अनेक कारणों से सभी तरह से वेद ही सभी अर्थों का मूल साधन है, ऐसे निर्णय से मैंने इस आर्ष "वेद धर्म विद्या प्रचार" के द्वारा यावज्जीव इस जगत् जनार्दन की सेवा करने का सुदृढ़ सङ्कल्प किया है।

उसमें भी सभी शाखाओं के "ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषदादि" वचनों के अनुरोध से, तथा यास्कादि मुनि प्रणीत निरुक्त कल्प सूत्रादि वेदाङ्ग ग्रन्थों के अभिप्राय के अनुसार, "सायन, उवट, महीधर, भट्ट भास्करादि" पूर्वाचार्य प्रणीत ऋग्वेदादि वेद भाष्यों के सहायता से, "मन्वादि धर्म शास्त्र तथा न्याय पूर्वोत्तर मीमांसादि दर्शन शास्त्रों के सिद्धान्त के अविरोध से "मन्त्र ब्राह्मणात्मक" ऋग्वेदादि चारों वेदों के तत्वार्थ विमर्शन से, सुगम विस्तृत व्याख्या करने का सङ्कल्प करके श्री काशी अस्सी सङ्गम भागीरथी के तटपर (सं० १९९३) बैशाख शुक्ल अक्षय्य तृतीया भृगुवासर के रोज आरम्भ किया है।

तत्रापि "वेदसुधा, योगसुधा, पुरुषसुधा, विश्वरुपचक्र, वेद मीमांसा, पुरुष मीमांसा, सप्तमर्यादासद्विद्या सुधा" इत्यादि नामक अनेक ग्रन्थ हैं।

आशा है कि—श्री भगवान की प्रेरणा से, श्रीगुरुवर्यों के अनुग्रह से

धर्मात्माओं की आर्थिक सहायता से मेरे हाथ से "श्रीवेद" माता की यह एक वाङ्मय सेवा पूर्ण हो। इसके द्वारा धर्म और सद्विद्या की अभिवृद्धि मे सम्पूर्ण जगत् जनार्दन को सेवा भी हो। यही मेरी ईश्वराराधना हैं।

इसी तरह इस भारतवर्ष में वेद, वेदाङ्ग दर्शनादि शास्त्र, आयुर्वेदादि उपवेद, काव्यनाटकादि साहित्य, संस्कृत भाषा, और हिन्दी महाराष्ट्र वगैरह देश भाषाएं, तथा (सायन्स) इञ्जनीयर भौतिक यान्त्रिक चित्र गायनादि कला कौशल्य वगैरह इतर सभी तरह के विद्या शिक्षण के लिये काशी वगैरह तीर्थ स्थानों में, शहरों तथा राजधानियों में भी सब दूर अनेक सुप्रसिद्ध बड़े बड़े विद्यालय वगैरह संस्थाएं मौजूद हैं। और वे विद्या शिक्षण के लिये पर्याप्त भी हैं। किन्तु—ब्रह्मचर्य, गोसेवा, सार्थ वेद, वेदाङ्ग, सशास्त्र योग क्रिया, तपश्चर्या, मन्त्रयोग, अध्यात्मविद्यादि सद्विद्याओं से सम्मिलित पूर्वोक्त "आर्य सद्विद्या" शिक्षण के लिये कहीं भी कोई योग्य आर्ष आश्रम स्थान नहीं है। और अभीतक उसके लिये कोई भी प्रबन्ध नहीं हुआ है। न करने के लिये भी किसी का लक्ष्य है।

अफसोस है। क्या आज इस भारत भूमि में एक भी संस्था आप बतला सकते हैं? जहां बालकों को "अहिंसासत्यादि" सार्वभाम धर्म का सच्चा रहस्य और सशास्त्र आचरण सिखाया जाता हो।

आज सभी लोगों को अत्यन्त आवश्यक सर्वोच्च "ब्रह्मचर्या" चरण के लिये बालकों को कौन सी शिक्षा मिलती है।

जिन बालकों को जन्म से ही सत्य का पाठ कभी नहीं पढ़ाया गया हो, वे एक सत्यव्रती कैसे हो सकते हैं। हम बालपन से ही उन्हे दूषित वातावरण में रख, अयुक्त यथेच्छ आहार विहार कराते हैं, और आगे चलकर हम उनकी वाचिक मानसिक शारीरिक तथा अन्य भी उच्चतर विकास देखना चाहते हैं। क्या यह सम्भव हैं? क्या वे

किसी बड़े से बड़ी पदवी और ऐश्वर्य को पाकर भी ऐसी अवस्था में सुखी जीवन व्यतीत कर कसते हैं ? कभी नहीं ।

सुख बाह्यिक विकास से नहीं ,किन्तु आन्तरिक विकास से ही प्राप्त हो सकता है। अर्थात् सच्चे सुख के लिये पूर्वोक्त सद्विद्या ही शरण है।

अतएव अपने प्राचीन महर्षियों तथा आचार्य लोगों ने जनता को वही आर्ष सद्विद्या का शिक्षण देने के लिये ही इस भरतखण्ड में सब दूर 'मठ मन्दिर देवता अखाड़ा विद्यालय तीर्थ स्थान" वगैरह संस्थाओं को स्थापन कर रखा है।

वे मठ मन्दिरादि संस्थाएं भी उसी आर्ष वेद धर्म विद्या से ही सजीव रह सकती है। उस आर्ष सद्विद्या के शिक्षण तथा आचरण के बिना वे मठ मन्दिरादि संस्थाएं और उनके आश्रित आर्ष वैदिक धर्मावलम्बी सम्पूर्ण जनता भी केवल मृत प्राय ही है, अर्थात् निर्वीर्य ही हैं।

इस लिये अपने सन्तान, तथा मठ मन्दिर देवता विद्यालय तीर्थ स्थान वगैरह संस्थाओं के सहित सम्पूर्ण भारत भूमाता को, और सारे जगत् के मूल आधार भूत वेद धर्म विद्याएं, तथा भारतीय सम्पूर्ण जनता को भी सजीव रखने के लिये और आगे सुवीर्य बनाने के लिये भी उन्ही आर्ष वेद धर्म विद्याओं का शिक्षण एक ही शरण हैं।

इस लिये उसी धर्म विद्या की अभिवृद्धि के लिये प्रयत्न करना ही सभी विद्वान् लोग और धनिक धर्मात्माओं का प्रधान कर्तव्य हैं।

मैने आजन्म गुरु शुश्रूषादि तपस्या द्वारा सम्पूर्ण वेदवाङ्मयों और योग शास्त्रों की बृहद्व्याख्या "वेदसुधा, योगसुधा, और पुरुष-सुधा" नामक ग्रन्थों में की है। वे कैसे हैं, और श्रीभगवान ने अपनी दिव्यवाणी को मेरे अन्तरात्मा के द्वारा उन में कैसा झलक दिखलाया है, इसको तो सुविज्ञ पारखी विद्वान लोग ही बतला सकते हैं। मेरा अपना विश्वास है कि---जबतक मैं स्वतः परिश्रम कर छोटे २ बच्चों को आरम्भ से ही अपनी शिक्षा दीक्षा में रख उन सभी सद्विद्याओं का अभ्यास नहीं कराऊंगा, तब तक मेरे सम्पूर्ण तपस्या से उपार्जित अमूल्य बिधि सारे संसार से वञ्चित हो गुप्त ही रह जायगा। और मुझे भगवान की दी हुई शक्ति अपने ही साथ लेकर इस संसार से चला जाना पड़ेगा। ऐसी अवस्था में बताइये, मुझ से इस जगत् जनार्दन की सेवा क्या हो सकी ? आज कल तो हम सबों को 'वेद' और 'योग' विद्या का नाम ही सुनने को मिलता है।

इसी अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये, अपनी 'आर्षविद्या' के शिक्षण के लिये 'वातावरण' को ध्यान में रख बहुत खोज के बाद मैंने 'श्रीक्षेत्रगोकर्ण' नामक तीर्थ स्थान में एक 'ब्रह्मचर्याश्रम' स्थापित किया है। एक उसी प्रकार का 'अश्रम' सारे भारतवर्ष के विद्याओं के केन्द्रस्थान 'काशी' में स्थापित करने का मैंने सङ्कल्प कर रखा है। किन्तु मेरा कोई सहायक नहीं, आज तक तो किसी २ प्रकार भिक्षा मांग कर मैंने स्थापित किये हुए आश्रम में ब्रह्मचारियों को सत् शिक्षा देते हुए जीवित रखा है। आगे अब कोई चारा नहीं। आजही आप जाकर देख सकते हैं, सैकड़ों गौवें और बालकों की कैसी दयनीय दशा है।

बहुत लोगोंके पास इस'आर्ष-वेद-धर्म-विद्या'वृद्धिरूपी सर्वोत्कृष्ट ध्येयमें हाथ बटाने के लिये गया, किन्तु—प्रथम तो मेरे ध्येय का सच्चा रूप पहचानने वाला कोई मिला ही नहीं, इस सत्कार्य में पूर्ण रूपसे हाथ

बटाना तो अलग है। मेरा सहायक ईश्वर ही हैं, मैं चारो ओर से निराश होकर आज दो वर्षों से श्रीकाशी गङ्गातट पर ईश्वर को याद कर रहा था। बहुत प्रकार से निराहारादि नियम से इसके लिये अनुष्ठान किया। अभी पिछले अधिक मास की बात है कि १६ दिनका 'अनशनव्रत' से अनुष्ठान किया।

और वहीं से इस विद्या प्रचार को आरम्भ किया है। आप लोग इस सद्विद्या का लाभ लेने से मेरा यह परिश्रम सफल होगा। और आपलोगों का कल्याण भी होगा। विशेष निवेदन सभी धर्मात्मा लोग स्वयं इस ब्रह्मचर्याश्रम का आश्रय करके, और सद्विद्या शिक्षण के लिये अपने बालकों को भेज के यथा शक्ति भिक्षादान से आर्ष धर्म विद्या भिवृद्धि का पुण्य और यश प्राप्त कर लेंगे। और श्रीसर्वविद्येशान के अनुग्रह का सुपात्र बनेंगे। इत्यादि विज्ञापयिता।

श्री दैवरातः गजानन्द शर्मा

कुलपतिः

ब्रह्मचर्याश्रमः

जिला कारवार, पोष्ट गोकर्ण

मुद्रक—श्रीयुगेश्वर सिंह, चोस प्रेस, मुजफ्फरपुर।